तंत्री वादन की परंपरा में सितार को विकसित करने में प्रसिद्ध कलाकारों का योगदान

लायका भाटिया
शोध छात्रा, संगीत विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ

सारांश

प्राचीन काल से ही हमें तन्त्री वाद्यों की वादन विधि के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। 11वीं से 14 वीं शताब्दी में अनेक संगीत ग्रथों में, जिनमें नान्यदेव का भरत भाष्य, मानसौल्लास, संगीतोपनिषत्सारोद्वार संगीत रत्नाकर, संगीत मकरंद मुख्य है। संगीत रत्नाकार में वाद्याध्याय में वाद्यो की वादन विधि के बारे में बताया गया है। उत्तर मध्यकाल में प्रचलित रूद्र वीणा के दो रूपों (सरस्वती वीणा तथा तजौंरी वीणा) में प्राचीन किन्नरी वीणा की वादन विधि का विधान सामान्य अंतर से अपनाया गया, लेकिन रबाब, सुरसिंगार, सरोद, सितार आदि में वादन विधि के नये रूपों का प्रादुर्भाव हुआ। भरत के नाट्य शास्त्र में तत् वाद्यों की वादन क्रिया के संबंध में दाहिने और बायें हाथ के अलग–अलग तथा दोनों हाथों को मिलाकर अनेक पद्धतियों का वर्णन किया है इन समस्त क्रियाओं को भरत ने धातु कहा है। धातुओं तथा वृत्तियों के अतिरिक्त भरत ने अन्य प्रकार की वादन विधियों का भी वर्णन किया है जिसका उल्लेख डा. लालमणि मिश्र के ग्रंथ 'भारतीय संगीत वाद्य पृष्ठ सख्या 27 पर मिलता है। भरत ने अपने 'नाट्य शास्त्र' में धातुओं का वर्णन तो किया है। परंतु हस्त व्यापार नहीं दिया। प्राचीन काल में वाद्यों का वादन संगति वाद्य के रूप में किया जाता था। वादन की यह प्रथा 18 वीं शताब्दी तक विद्यमान रही। 18 वीं शताब्दी के अतिंम तथा उन्नीसवीं शताब्दी की शुरूआत में तन्त्री वाद्यों की स्वंतत्र वादन शैली आरम्भ हुई। सितार की वादन विधि को विकसित करने में कई कलाकारों ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिनमें पं. रविशंकर, उस्० विलायत खां तथा अब्दुल हलीम ज़ाफ़र खाँ का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। इस शोद्यपत्र को लिखने का उद्देश्य इन तीनों कलाकारों द्वारा सितार वादन को विकसित रूप देने में दिए गए योगदान को उजागर करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ऐतिहासिक शोध प्रविधि के अन्तर्गत विभिन्न पुस्तकों से सामग्री एकत्रित करके शोध पत्र को सम्पूर्ण रूप प्रदान करने की चेष्टा की गई है।

वैदिक युग भारतीय इतिहास का प्राचीनतम युग है इसमें प्राचीन काल की संगति संबंधी उन्नति एवं वाद्य–वादन की क्रमिक परंपरा का चित्र प्राप्त होता है। किसी वाद्य द्वारा सप्रयास स्वर समूह उत्पादित करके अपने हृदयगत भावनाओं को अभिव्यक्त करने की क्रिया को वादन कहते हैं। इसमें स्वर, लय, ताल का मिश्रित प्रयोग किया जाता है। संगीत के मूल तत्त्वों को ध्यान में रखते हुए वाद्यकला यथार्थत संगीत की पूर्णरूपेण प्रतिनिधी कला है। इसमें स्वर और लय का पूर्णरूप से अधिकार है। इसमें न तो गायन की भांति शब्दों का प्रयोग किया जाता है और न ही नृत्य की भांति अंग संचालन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार वाद्यकला, गान तथा नृत्य की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म और अक्रत्रिम आनन्द प्रदान करने वाली होती है।

संगीत चाहे भारत का हो या विश्व के किसी अन्य देश का, उसमें वाद्यों का एक अलग महत्वपूर्ण स्थान है। वाद्य चाहे राष्ट्रीय स्तर का हो या किसी क्षेत्र–विशेष का, वह उस क्षेत्र अथवा राष्ट्र की प्राकृतिक स्थिति, सांस्कृतिक गति–विधि तथा सभ्यता स्तर पर प्रकाश डालता है।

''वाघ एक ऐसा उपकरण है, जो संगीतात्मक ध्वनि तथा उसकी गति का हमें बोध कराता है।''[1]

नाद के दो भेदों में से 'आहत नाद' जिसको हम सुन सकते हैं, व्यवहार में ला सकते है, अपने पाचं ध्वनि रूपों में जिन्हें संगीतात्मक ध्वनियाँ कहते हैं, प्रस्फूटित होता है। ये संगीतात्मक ध्वनियां नखज,

वायुज, चर्मज, लोहज तथा शरीरज होती हैं। वीणा आदि वाद्य नखज, वंशी आदि वायुज, मृदंग वाद्य चर्मज, मंजीरा आदि लोहज तथा कण्ठ ध्वनि शरीरज है। इन पाचं प्रकार की ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले वाद्यों को 'चंचमहा वाधनि' कहा गया है।[2]

नारदीय शिक्षा में इस प्रकार विवरण प्राप्त होता है–

''एक ईश्वर निर्मित नैसर्गिक अन्यच्चतुर्विद्य मनुष्य निर्मित चेति पंच प्रकारः महा वाद्यावाम्'

अर्थात् एक ईश्वर द्वारा निर्मित है जो नैसर्गिक है तथा अन्य चार प्रकार के वाघ मानव विरचित हैं।[3]

महर्षि भरत और दत्तिल ने इनकी संख्या चार मानी है जो तत्, अवनद्ध, धन एवं सुषिर है। भरत ने वाद्यों के चार प्रकार के लक्षणों को इस प्रकार स्पष्ट किया है–

''तंत तन्त्रीकृत ज्ञेयमबद्ध तु पौष्करम्।
धर्म तालुस्य विज्ञेयः सुषिरी वंश उच्यते।।''[4]

इस प्रकार तत् अवनद्ध, धन एवं सुषिर क्रमशः तन्त्री वाद्य, ताल वाद्य, पुष्कर वाद्य तथा वंशी वाद्य है। तन्त्री वाद्य हिन्दुस्तानी शास्त्रीय परंपरा की अमूल्य धरोहर है जिसने भा० संगीत को अपने जन्मकाल से ही सींचा है।

वर्तमान समय में जो भा० संगीत अपनी समद्ध अवस्था को प्राप्त होता है उसका सारा श्रेय तन्त्र वाद्यों पर किए गए प्रयोगों पर जाता है और इनकी रूपात्मकता में तन्त्री वाद्यों की गुणवत्ता के विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते है। वैज्ञानिक रूप के अतिरिक्त तन्त्री वाद्यों का प्रयोग व्यवहारिक रूप में भी होता है और वर्तमान समय में भी हो रहा है। और इसमें प्रतीकात्मकता की झलक भी स्पष्ट रूप से उजागर होती है। वाद्यों का प्रयोग चाहे शास्त्रीय हो, चाहे भारत का लोक संगीत हो चाहे फिल्मी संगीत हो या फिर नाटक को उभारने या रंग मंच दृष्यों को उभारने का काम हो उन समस्त रीतियों में वाद्यों का प्रयोग अवश्य होता है और यह प्रथा प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय तक प्रचलित है।

तन्त्री वाद्यों की श्रेणी में सितार अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। मानव की अंतरंग भावनाओं को ऊंगलियों द्वारा दर्शाना कोई सहज कार्य नहीं है। गायन में तो साहित्य निहित है जिसमें शब्दों द्वारा गायक अपनी भावनाओं को श्रोताओं तक पहुँचाता है परंतु वादन में शब्दों का प्रयोग नहीं होता। इसमें ऊंगलियों द्वारा वादक अपनी भावनाओं को दुसरों तक पहुंचाता है जो कि सरल नहीं है। सितार वादन पर कण, खटका, मुर्की, ज़मज़मा, मींड, कृंतन आदि क्रियाओं द्वारा कलाकार गायन को सितार पर दर्शाने का जो कार्य करते हैं वह प्रशंसनीय है।

आधुनिक युग का सर्वाधिक प्रसिद्ध तत् वाद्य सितार, मध्ययुग से विकसित होता हुआ अपने वर्तमान स्वरूप में पहुँचा है। सितार की उत्पत्ति भा० 'त्रितंत्री वीणा' से हुई, ऐसा विद्वानों का मत है।

अधिकतर विद्वानों के विचार से सितार ईरानी या पर्शियन वाद्य है जो मुसलमानों के आगमन के साथ भारत में आया था। कुछ विद्वान अमिर खुसरों को सितार का आविष्कारक मानते हैं। अकबर के दरबार के विद्वान अबुल फ़ज़ल ने 'आइने– अकबरी' नामक पुस्तक में अमीर खुसरों को 'कोल' तथा 'कल्बाना' का आविष्कर्ता तो माना है पर कहीं पर भी सितार के संबंध में कुछ नहीं कहा।

इसके अतिरिक्त दरगाह कुली खां ने मुहम्मद शाह रंगीले के समय के 'खूसरों खां' को सितार का आविष्कारक बताया है।

वर्तमान में प्रचलित सितार को लोकप्रिय बनाने में कई कलाकारों ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है जिन में से कुछ प्रसिद्ध कलाकारों का योगदान निम्नलिखित है

पंड़ित रविशंकर

सुप्रसिद्ध सितार वादक पं० रविशंकर का व्यक्तित्व अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के शिखर पर सदा ही चमकता रहेगा। अपने कलात्मक वैभव एवं ज्ञान के बल पर इन्होंने भा० मधुर वाद्य यन्त्र सितार को विदेशी संगीत जगत में उच्च स्थान दिलाया जिसे भा० संगीत इतिहास सदैव आस्थापूर्वक स्वीकारता रहेगा।

श्री हरीश चन्द्र श्रीवास्तव के शब्दों में ''आप ऐसे रवि हैं जिन्होंने संगीत की किरणों को विदेशों में पहुंचाया और भारत का मस्तक ऊंचा किया।[5]

पं. रविशंकर ने सितार में परम्परागत चली आ रही सितार शैली में विशेष निखार पैदा किया। इनके वादन में बीन अंग व गायकी अंग का समन्वय कृंतन, खटका, ज़मज़मा, लयकारी इत्यादि का सितार में स्पष्ट प्रयोग हुआ है।

सितार में लरज की तार को जोड़ने का श्रेय भी पं. रविशंकर को प्राप्त है जिससे आज सितार पर वीणा–वादन के प्रत्येक अंग का वादन सम्भव हो सका। सितार जिसे आलाप, जोड़ व बीन अंग के गंभीर संगीत के लिए अनुपयुक्त समझा जाता था उसे उन्होंने ग़लत साबित किया।

पं. रविशंकर ने भा० वाद्य–वृन्द में कुछ विदेशी वाद्यों को शामिल करके भा० वाद्य–वृन्द का स्तर ऊँचा किया। आपके वाद्य–वृन्द में शास्त्रीय, अर्ध शास्त्रीय और लोकगीतों पर आधारित धुनें मिलती हैं। काली बदरिया, निर्झर, ऊषा, रंगीन, कल्पना इत्यादि वाद्यवृन्द सुगम संगीत पर आधारित होते हुए भी विशेष लोकप्रिय हुई। वाद्यवृन्द की इनकी अनेक रचनाओं का संकलन इनकी पुस्तक 'रविशंकर के आरकेस्ट्रा' में है।

विदेशों में भा० संगीत के प्रचार हेतु पं. रविशंकर अपने कार्यक्रम में पूर्व फ्रांसीसी और अंग्रेजी में भा० संगीत संबंधी परिचयात्मक भाषण भी देते थे और किसी राग को अधिक समय बजाने की अपेक्षा, कर्नाटकी संगीत से विचार ग्रहण कर प्रत्येक कार्यक्रम में तीन–चार शैलियों और रागों की अवतारणा भी करते रहे ताकि विदेशी जनता को भा० संगीत समझने में असुविधा न हो।

कर्नाटक और उत्तर भा० संगीत के नैकट्य के लिए इन्होंने दक्षिणी भा० 'हंसध्वनि' व 'चारूकेशी' इत्यादि रागों की उत्तर भा० संगीत में प्रचलित किया व इनके मिश्रण से अनेक नए रागों की रचना भी की जैसे मोहन–कौंस, तिलक श्याम व रसिया। इनके स्वनिर्मित रागों के अतिरिक्त गंगेश्वरी, रंगेश्वरी, परमेश्वरी और कामेश्वरी चार नव रागों की रचना सन् 1968 में की।[6]

सितार के प्रचार हेतु 1962 में पं. रविशंकर ने 'किन्नर स्कूल आफ म्यूज़िक' की स्थापना की। उमा शंकर मिश्र, जयाबीस कार्तिक कुमार, शमीम अहमद, शंकर घोष, सुरेन्द्र दत्ता, विनय कुमार अग्रवाल के अतिरिक्त पाश्चात्य बीटल–गायक जार्ज हैरिसन इनके प्रमुख शिष्य रहे।

इस सुविख्यात सितार वादक को सन् 1962 में 'संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। 1977 में भारत सरकार द्वारा 'पदम भूषण' व सन् 1981 में 'पदम विभूषण' से विभूषित किया गया। सन् 2001 में 'भारत रत्न' पुरस्कार से सम्मानित किया।

संगीत जगत को अपने सितार वादन से मोहित करने वाले इस संगीत रत्न की मृत्यु 12 दिसम्बर 2012 में हुई। पं. रविशंकर द्वारा सितार वादय को लोकप्रिय बनाने में दिए गए योगदान को संगीत जगत हमेशा याद रखेगा।

उ० विलायत खां

सुप्रसिद्ध सितार वादक स्व. उ० विलायत खां वाद्य संगीत एवं कण्ठ संगीत में निकटता लाने के प्रयास के अग्रणी व सितार में गायकी अंग वादन के प्रवर्तक रहे।

सन् 1928 में गोरीपुर (पूर्वी बंगाल) में उस्० विलायत खां ने एक ऐसे घराने में जन्म लिया जहां सितार वादन पिछली सात पीढ़ियों से चला आ रहा था। अपने युग के महान सितार वादक उस्० इनायत खां इनके पिता थे, परन्तु दस वर्ष की कम आयु में पिता का साया सिर से उठ जाने के कारण इन्होंने सितार की शिक्षा श्री डी. टी. जोशी जो इनके गुरु भाई व इनके पिता के शिष्य थे, से ग्रहण की। साथ ही समकालीन गुणियों का प्रभाव भी पड़ा। मूलतः जिन महान कलाकारों से ये प्रभावित हुए उनमें थे स्व. उ० अमीर खां, स्व. उ० रजब अली खां व स्व. उ० फैयाज़ खां। अपनी आत्म–प्रतिभा के बल पर इन्होंने स्वयं अपनी शैली का निर्माण कर लिया जो 'गायकी–अंग' या ख्याल अंग के नाम से प्रसिद्ध है।

इनकी खास शैली 'गायकी अंग' के लिए सितार का तद्प्रचलित रूप पर्याप्त न था इसलिए इन्होंने सितार में कुछ परिवर्तन किए। सितार में दो जोड़े की तारों के स्थान पर केवल एक ही तार को रखा क्योंकि इनके मतानुसार गूँज या झनझनाहट के लिए तो तरबें ही पर्याप्त थीं। दूसरा परिवर्तन यह किया कि पीतल के पंचम के स्थान पर लोहे के पंचम को रखा। इससे सितार पर गायकी अंग की गत, तानें, झाला, आसानी से बजते हैं।

उ० विलायत खाँ साहब तथा उनके घराने के लोग द्रुत ख्याल की रचनाओं को बिना अतिरिक्त मिज़राब के बोलों को लगाए पूर्णतः गायकी अंग से बजाते थे।

स्व. उ० विलायत खाँ ने राग शंकरा की बन्दिश 'ऐसो ढीट लंगर' को बहुधा संगीत सम्मेलनों में सुनाया।[7]

राग शंकरा

स्थायी

ग				2				0				3			
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
				नि	निधनि	संनि	रेंसं	नि	धनि	प	ग	प	नि	ध	सं
				ऐ	सोऽऽ	दीऽ	टऽ	लं	गऽ	र	क	र	ब	रा	जो
नि	–	प	–												
री	ऽ	ओ	ऽ												

21 अक्टूबर 1994 में चण्डीगढ़ में आयोजित एक संगीत समारोह में भी उन्होंने निम्न बंदिश सुनाई थी–

चन्दन फुलन के डारू हरवा
सुन्दर सुरजन साई नाथ तोरे डारू गारवा।[8]

राग–गावती (तीनताल)

स्थायी

X				2				0				3			
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
								ग	म	रे	स	नि	स	ध़	प
								च	न्द	न	फु	ल	न	के	ऽ
ध़	–	प़	–	नि	नि	स	–								
डा	ऽ	रू	ऽ	ह	र	वा	ऽ								
								नि	स	ग	म	रे	रे	स	–
								सुं	ऽ	द	र	सु	र	ज	न
रेस	नि	स	धप	म	प	ध	प	पनि	सरें	नि	सं	ध	ध	प	–
साऽ	ऽ	ई	नाऽ	ऽ	थ	तो	रे	डाऽ	ऽऽ	रू	ऽ	ग	र	वा	ऽ
ग	–	म	प	रे	रे	स	–								
डा	ऽ	रू	ऽ	ग	र	वा	ऽ								

उ. अब्दुल हलीम ज़ाफ़र खां

उ. अब्दुल हलीम ज़ाफ़र खां महान सितार वादकों की श्रेणी में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। परम्परा और नवाचार के संगम से अब्दुल हलीम ज़ाफ़र खां को यद्यपि पैतृक परम्परा से ही संगीत–सिद्धि प्राप्त थी परन्तु फिर भी उन्होंने अपने सतत् अभ्यास से अपनी कला–साधना को इस स्तर पर पहुँचाया।

अब्दुल हलीम ज़ाफ़र खां ने अपने सांगीतिक जीवन की शुरूआत गायन से की व केवल 9 वर्ष की छोटी अवस्था में ही इन्हें आकाशवाणी पर ग़जल प्रसारित करने का सुअवसर मिला। सितार वादन की शिक्षा अपने पिता स्व. ज़ाफ़र खां से लेनी प्रारम्भ की। परन्तु प्रख्यात संगीतकार बाबू खां बीनकार को सुनकर सितार के प्रति आकर्षण तीव्र हुआ तथा उनसे शिक्षा ग्रहण करने की इच्छा प्रबल हो उठी परन्तु शीघ्र ही उस्० बाबू खां के देहावसान के पश्चात् इन्होंने उस्० बंदे अली खां बीनकार के वंशज मेहबूब खां का शिष्यत्व ग्रहण किया।

अब्दुल हलीम ज़ाफ़र खां सितार पर नव–प्रयोग करने के लिए शुरू से ही प्रयत्नशील रहे व उनकी प्रयोगशीलता ने ही सितार पर 'ज़ाफ़रखानी' बाज के रूप में सम्पूर्णता प्राप्त की। उनके अपने शब्दों में–''यह कोई ऐसी चीज़ नहीं है जो सिर्फ अंगुलियों की तकनीक से निर्मित हो, किन्तु सितार वादन की दो पारम्परिक शै०–विलम्बित लयकारी, 'मसीतखानी' और द्रुत लयकारी 'रज़ाखानी'–के बीच संतुलन प्राप्त करने की, ईमानदारी से पूर्ण कोशिश है।''[9]

इन्होंने इस ज़ाफ़रखानी बाज में बायें हाथ के काम को अधिक और मिज़राब के प्रयोग को कम किया। परम्परागत शैली में उन्होंने नवाचार का यह संगम कर दिया और यही नवाचारी इनके चक्रधुन, माध्यमी, कल्पना, खुसरो वाणी, फुलवन इत्यादि स्वनिर्मित रागों के माध्यम से उजागर हुई।

उपसंहार

तीनों ही प्रसिद्ध सितार वादकों ने सितार वाद्य को नई दिशा प्रदान की जिससे यह वर्तमान समय में संगीत विद्यार्थियों में लोकप्रिय बना हुआ है। इन तीनों कलाकारों ने सितार वादन में नई शैलियों को जन्म दिया तथा गायकी एवं बीन अंग को सितार में उतारकर सितार को तंत्री वाद्यों की श्रेणी में सर्वोच्च स्थान दिलाया तथा अपना नाम संगीत जगत में सदा के लिए अमर कर गये।

संदर्भ

1 पं. साहित्य कुमार नाहर, विभिन्न देशों के लोक–वाद्य, संगीत, मई 1985, पृ. 33
2 मिश्र लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, पृ. 13
3 नारदीय शिक्षा, संगीत चूडामणि, पृ. 69
4 भरत, नाट्यशास्त्र, अध्याय 28, श्लोक 2.
5 श्री वास्तव चन्द्र हरीश, हमारे प्रिय संगीतज्ञ, पृ. 109
6'आधुनिक युग में नये निर्मित राग', संगीत, जुलाई, 1974
7 डॉ. अरूण मिश्रा, भारतीय कंठ संगीत वाद्य संगीत, पृ. 222
8 डॉ. अरूण मिश्रा, भारतीय कंठ संगीत और वाद्य संगीत, पृ. 228
9 नाडकर्णी मोहन, मध्यवर्ती, पृ. 62

सहायक ग्रंथ

गर्ग, लक्ष्मीनारायण, निबन्ध संगीत, 1978, संगीत कार्यालय, हाथरस।
परांजपे शरच्चन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, 1985, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।
पाठक, जगदीश नारायण, संगीत निबंधमाला, 1970, प्रयाग संगीतसमिति, इलाहाबाद।
मदन, पन्ना लाल, संगीत कला का इतिहास, 1970, कृष्ण नगर, होशियारपुर।
मिश्र लालमणि, भारतीय संगीत वाद्य, 1973, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।
शर्मा भगवतशरण, सितार–मालिका, 1995, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ. प्र.) सातवाँ संस्करण।